

सत्संग एवं सिद्धयोग

विशेष लेख :- योगीराज अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज



सत्संग शब्द का क्या अर्थ है, इसके विषय में सर्व साधारण में धारण है कि जहां पर दस-बीस व्यक्ति मिलकर किसी भी प्रकार का भगवत् गुणानुवाद गायन, भजन-संकीर्तन, कथा, प्रसंग आदि करते हैं, इस प्रकार के क्रिया-कलाप को सत्संग कहा करते हैं। वैसे हमारे शास्त्रों में सत्संग की महिमा बहुत प्रकार से वर्णित है। जगदात्मा अखिल लोक पावन भगवान श्रीकृष्ण ने श्रीमद्भगवद्गीता के ग्यारहवें स्कन्ध में सत्संग की महिमा को बताते हुए दो श्लोकों में इस प्रकार कहा है:-

न रोधयति माः योगो

न सांख्यं धर्म एव च।

न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो,

नेष्टा पूर्त न दक्षिणा॥

ब्रतानि यज्ञश्छन्दांसि,

तीर्थानि नियमा यमाः।

यथावरुंधे सत्संगः

सर्व संगापहो हि माम्॥

भगवान ने पहले पहल 'नरोधयतिमाम् योगः' अर्थात् योग मुझे खुश नहीं कर सकता ये शब्द कह करके अपनी प्राप्ति के साधनों में सत्संग की अपेक्षा योग को भी उत्कृष्ट साधन नहीं माना। पाठकगण अपने मन में यह विचार करते होंगे कि पूर्ण-योग योगेश्वर अखिल आत्मा भगवान श्रीकृष्णचन्द्र जी ने योग को अपने मुख से अपेक्षाकृत अपनी प्राप्ति का गौण साधन मान लिया। पर यह बात यथार्थ नहीं है। सत्संग किस वस्तु का नाम है, यह अभी कुछ पंक्तियों के बाद ही हम समझा देना चाहते हैं कि वस्तुतः साधक को सत्संग के द्वारा ही अपने ध्येयभूत योग की प्राप्ति हुआ करती है।

भगवान का यह कहना 'न रोधयति माम् योगः' केवल मात्र साधन योग की ओर का ही संकेत है। भक्त लोग भगवान का गुणानुवाद करते हुए प्रायः गाया करते हैं:-

नाहं बसामि बैकुण्ठे,

योगीनाम् हृदये न च।

मद्भक्ता यत्र गायन्ति,

तत्र तिष्ठामि नारदा।

अर्थात् मैं न बैकुण्ठ में रहता हूँ और न ही योगियों के हृदय में रहता हूँ। किन्तु जहाँ पर मेरे भक्त लोग गायन किया करते हैं वहीं मैं रहा करता हूँ। इसका अभिप्राय यह नहीं समझना चाहिये कि भगवान ने भक्तों के अधीन होकर अपने दिव्य लोक बैकुण्ठ को एवं योगियों के हृदय को छोड़ दिया यथार्थ में तो उनके रहने का स्थान उनका बैकुण्ठ लोक एवं हमेशा समाधिस्थ रहने वाले योगियों का हृदय ही है। किन्तु भक्तों के गायन में भी मेरा उत्कृष्ट आकर्षण है और इनके प्रेम एवं हृदय के भाव से परिपूर्ण उनके गायन में मैं जाया करता हूँ यही इसका सांकेतिक अर्थ है, वस्तुतः तो योगियों का हृदय एवं बैकुण्ठ ही उनके निवास का स्थान है। इसी प्रकार से इस श्लोक में उनके अपनी प्राप्ति के जितने साधनों का वर्णन शास्त्रों में किया गया है उन सबको गौण बतला कर सत्सङ्ग की ही प्रमुखता बतलायी गई है। सांख्य शास्त्र का विवेचनात्मक सिद्धांत भगवान को सत्सङ्ग की अपेक्षा प्रिय नहीं है। थोड़ी देर तक हम विचार कर लें। इन दो श्लोकों के अन्दर जगदात्मा श्रीकृष्ण ने प्रायः अपनी प्राप्ति के सभी साधनों को न के बराबर गौण बताकर सत्संग की प्रधानता का वर्णन किया है। इन श्लोकों के पहले चरण के अन्दर न 'रोधयति माम् योगः' कह करके योग का गौण रूप से वर्णन किया है। वस्तुतः भगवान श्रीकृष्णचन्द्र के जीवन-चरित्र को

हम उठाकर पढ़ें तो उनका पूरा जीवन योगमय है। और उन्होंने अपने प्रत्येक लीला चरित्र से संसार को योग का पाठ पढ़ाया है। उनके जीवन की एक एक घटना यौगिक ऐश्वर्य से परिपूर्ण है। श्रीमद्भागवत के इन दो श्लोकों के अतिरिक्त अधिकांश में जितने उन्होंने उपदेश दिये वे सब योग पूरक हैं। और समझने वाले विद्वत्जनों के लिये यह दो और श्लोक ही योग की पूर्णतम महत्ता को बतलाते हैं। भगवान ने गीता में अर्जुन को योग की महत्ता बतलाते हुए स्पष्ट शब्दों में अर्जुन को आदेश दिया है कि—

तपस्विभ्योऽधिको योगी,

ज्ञानिभ्योऽपिमतोऽधिकः।

कर्मिभ्यश्चाधिको योगी,

तस्माद्योगी भवार्जुन॥

अर्थात् हे अर्जुन योगी का दर्जा ज्ञानी तपस्वी एवं कर्मकाण्डी सभी की अपेक्षा परमोत्कृष्ट है। इसलिये तू योगी बन।

बेदेषु यज्ञेषु तपःसु चैव,

दानेषु यत पुण्यफलं प्रदिष्टम्।

अत्येति तत्सर्वमिदं विदित्वा,

योगी परं स्थानमुपैति चाद्यम्॥

अर्थात् वेद में, यज्ञ में, तप में, दान आदि में पुण्य फल कहा है योगी उन सब का पूरा-पूरा उल्लंघन करके आदि परम स्थान को प्राप्त हुआ करता है। इसके अतिरिक्त जहां पर सांख्ययोग और योग का वर्णन गीता के अन्दर मिलता है वहां पर भी भगवान ने योग की महिमा का उत्कृष्टता के साथ वर्णन किया है। भगवान ने स्पष्ट शब्दों में कह दिया है:—

संन्यास्तु महाबाहो

दुःखमवाप्तम योगतः।

योग युक्तो मुनिर्ब्रह्म,

न चिरेणाधि गच्छति॥

— गीता

अर्थात् हे अर्जुन बिना योग के संन्यास को प्राप्त करना बहुत ही कठिन है और योग युक्त मुनि ब्रह्म को बहुत

जल्दी पा जाता है। इसलिये योग ही परम श्रेष्ठ है। अतः हे अर्जुन तुम्हें योग प्राप्ति का प्रयत्न करना चाहिये।

दूसरा साधन आत्म-स्वरूप की प्राप्ति के लिये सांख्य योग का अभ्यास है। और इसका भी संसार में बहुत बड़ा प्रचार है। किन्तु भगवान ने सांख्य शास्त्र के इस विवेचनात्मक सिद्धान्त को भी सत्संग की अपेक्षा नाम मात्र के बराबर गौण बतला दिया।

तीसरा साधन ईश्वर प्राप्ति का स्वाध्याय है। भगवान पतंजलि देव जी अपने योग-दर्शन में स्पष्ट रूप से आदेश करते हैं कि—

‘स्वाध्यायायदिष्ट देवता सम्प्रयोगः’

इस सूत्र का भाष्य करते हुए भगवान पतंजलिदेव जी निम्नांकित पंक्ति लिखते हैं:—

देवा ऋषयः सिद्धाश्च,

स्वाध्याय शीलस्य

दर्शनं गच्छन्ति,

कार्ये चास्य वर्तत इति॥

ऋषि मुनि एवं देवतागण स्वाध्याय शील व्यक्ति की आँखों के सामने जाया करते हैं और उनके काम कर दिया करते हैं। हमारे शास्त्र हमें स्पष्ट निर्देश करते हैं:—

स्वाध्यायाद् योगमांसीत,

योगात्स्वाध्यायमामनेत।

स्वाध्याय योग सम्पत्त्या

परमात्मा प्रकाशेत॥

अर्थात् मनुष्य को चाहिये स्वाध्याय के बल से इष्ट देव का साक्षात्कार कर ले और स्वाध्याय से योग की प्राप्ति हो और योग से स्वाध्याय का मनन करे। इस प्रकार स्वाध्याय और योग की सम्पत्ति के द्वारा परमात्मा का प्रकाश हो जाता है। किन्तु जगदात्मा भगवान श्रीकृष्ण ने यहां पर स्वाध्याय की साधना को भी सत्संग की अपेक्षा न के बराबर माना है।

चौथा साधन हमारे शास्त्र बतलाते हैं।

अर्थात् ब्रह्मचर्य और तप के द्वारा देवताओं ने मौत को

जीत लिया। तप से परमात्मा पहचाना जाता है। और तप और स्वाध्याय के द्वारा ही ध्रुव आदि ने ही ईश्वर का साक्षात्कार किया किन्तु भगवान ने स्वाध्याय की उत्कृष्ट महिमा बतलाते हुए दोनों श्लोकों में यह कहकर कि तप भी उनको रिझाने का साधन नहीं है। पाँचवें त्याग को भी अपनी प्राप्ति का साधन नाममात्र के बराबर ही दिखलाया है। वैसे श्रीमद्भगवद्गीता में:-

त्याग से शाश्वत शान्ति को प्राप्त कर लेता है, यह कह करके त्याग को भी अपनी प्राप्ति का साधन माना है। किन्तु यहाँ पर त्याग भी विशेष करके इन दो श्लोकों में सत्सङ्ग की उत्कृष्टता को समझाया है।

छठा ईष्टापूर्ण और दक्षिणा का है। ईष्टापूर्ण और दक्षिणा का अर्थ है कुएँ, बावरी, तालाब आदि बनवाना जिनके द्वारा परम पुण्य की प्राप्ति हुआ करती है। किन्तु जगदात्मा ने इन सभी साधनों को बिल्कुल न रूप से माना है। इसके अतिरिक्त बड़े-बड़े व्रतों को करना, आचरण करना वेद पाठ का सुनना, यज्ञ करना। यह सत्सङ्ग की अपेक्षा गौणरूप से वर्णित है।

इस सबका कारण क्या है क्यों योगेश्वर भगवान श्रीकृष्ण कभी अपनी प्राप्ति के सभी साधनों को इसी प्रकार से निरोधात्मक रूप से कह सकते हैं। सत्सङ्ग की अपेक्षा उन्होंने साधना व अभ्यास रखने वाली श्रेणी को बहुत ही गौण रूप से कहकर सत्सङ्ग की उत्कृष्टता बतलाई है। वस्तुतः ठीक ढंग से विचार करके देखा जाये तो सत्सङ्ग शब्द का अर्थ ही योग है। जिस प्रकार से पतंजलि योग दर्शन में यम-नियम आदि अष्टांग योग के साधनों को योग की बहिरंग साधना कह कर उनका दर्जा गौण रख दिया है। इसी प्रकार से परमात्मा की प्राप्ति के, योग के अतिरिक्त और भी जितने साधन हैं वे सब ईश्वर की प्राप्ति के साधन भूत हैं और साधन मनुष्य के पुरुषार्थ से ही उपलब्ध हुआ करते हैं। साधन करता हुआ मनुष्य परमात्मा को पा जाता है। इसमें कोई शंका की बात नहीं। किन्तु कोई पुण्यात्मा जीव अपनी विविध प्रकार की साधनाओं से महान पुण्य एकत्र करके यदि 'सिद्धयोग' का

विद्यार्थी बन जाता है और सत्पुरुषों का संग प्राप्त कर लेता है तब यह साधना उपरोक्त साधनों की अपेक्षा बहुत ही परमोत्कृष्ट है क्योंकि सत्सङ्ग शब्द का अर्थ है—

सत्तां महतो सत्पुरुषाणां संगः।

अर्थात् सत्पुरुषों का संग ही सत्सङ्ग है। सत्पुरुषों के संग से साधक हर समय शक्ति ग्रहण करता रहता है। वैसे तो संसार का हर प्राणी हर प्राणी से शक्ति प्राप्त करता रहता है। किन्तु शक्ति दे वही सकता है जिसने अपने अन्दर वस्तुतः शक्ति का संचय पूर्णरूपेण कर लिया है। एक व्यक्ति किसी को आँख से देखता है तो वह आँखों के द्वारा अपने दर्शनीय भूत व्यक्ति पर शक्तिपात करता है। इसके अतिरिक्त यदि योगी वाणी से कोई शब्द कहता है तो वह वाणी के द्वारा शक्तिपात करता है। किसी का स्पर्श करता है तो वह स्पर्श के द्वारा शक्तिपात करता है। हमारे पाठकों ने अच्छी प्रकार से अनुभव किया होगा कि संसार में कोई दुःखी प्राणी अपने दुःख से आक्रान्त होकर चिल्लाता है, रोता है तो उसको सान्त्वना देने के लिये उसके बड़े-बूढ़े उसके पास जाते हैं जब उसके सिर पर कर-स्पर्श करते हैं उनके प्यार व कर-स्पर्श से वह व्यक्ति शान्ति का अनुभव करता है। यह एक प्रकार का अपनी शक्ति का ही प्रभाव होता है जिसकी जितनी शक्ति बढ़ी होती है उतना ही व मनुष्य दूसरों को शक्ति दे सकता है यह तो लौकिक प्रवाह है लोक में हर व्यक्ति जब इस प्रकार से शक्ति प्राप्त कर लेते हैं तो जो लोग महापुरुषों के संग में रहने वाले हैं वे लोग कितनी शक्ति को ग्रहण करते रहते हैं इसका कोई अनुमान भी नहीं लगा सकता क्योंकि महापुरुष पूर्णरूपेण सिद्ध हुआ करते हैं और सभी प्रकार की शक्तियों से पूर्णरूपेण हर समय सम्पन्न रहा करते हैं इसलिये उनकी हर क्रिया से हर समय शक्तिपात होता रहता है। जो जन साधारण के कल्याण का बहुत बड़ा साधन बनता है। वस्तुतः तो बिना शक्तिपात के किसी का पूर्ण रूपेण अभ्युत्थान होना ही असम्भव सी बात है। उपनिषदों में यह स्पष्ट उल्लेख है:-

देहान्ते ज्ञानिभिः पुण्या-

त्पापाच्च फलमाप्यते।

ईदृशं तु भवेन्तत,

द्धक्त्वा ज्ञानी पुनर्भवित्॥

पश्चात्पुण्येन लभते,

सिद्धन सह सङ्गतिम्।

ततः सिद्धस्य कृपया,

योगी भवति नान्यथा॥

अर्थात् शरीर छूट जाने के बाद योग-रहित शाब्दिक ज्ञानियों को भी पाप-पुण्य का फल भोगना पड़ता है और इस प्रकार के पाप-पुण्य के संस्कारों को भोग कर इस प्रकार के ज्ञानी लोग पुनः संसार में जन्म लिया करते हैं और उसके बाद पुण्य के प्रभाव से इन लोगों को सिद्ध गुरु की संगति प्राप्त होती है। सिद्ध गुरु की संगति को पाकर के यह लोग योगी बनते हैं तब संसार-चक्र नष्ट होता है। उससे पहले किसी भी प्रकार से संसार-चक्र नष्ट नहीं होता है। यहां पर इन श्लोकों में बड़े-बड़े ऊँचे ज्ञानी को भी संसार-चक्र से निवृत्त होने के लिये सिद्ध-संगति की आवश्यकता वांछित हुई। इसलिये जगदात्मा भगवान श्रीकृष्णजी ने सत्संग की महिमा का इतना बड़ा वर्णन किया है। सत्संग शब्द का अर्थ हम पहले ही लिख चुके हैं:-

सत्पुरुषों व महापुरुषों का संग ही सत्संग कहलाता है। ज्योंहि मनुष्य को सत्पुरुषों की संगति मिलती है और सत्संगति प्राप्त करने वाला यदि पुण्यात्मा होता है तो उससे इस प्रकार की चेष्टायें बन जाती हैं जिनसे पूर्णतम सर्व समर्थ सिद्ध गुरु का हृदय प्रसन्न हो जाये और प्रसन्नता में उनका जो संकल्प बनता है वही उसके कल्याण का मूल स्रोत बन जाता है। सिद्धों के संकल्प में ही सकल कल्याण निहित है। जो जीव सिद्धों की संगति करते हैं और वह पुण्यात्मा हो तो उनके मनोनुकूल उचित सेवायें व्यवहार स्वाभाविक सम्पन्न होते हैं। क्योंकि वे पुण्यात्मा होते हैं। उसकी उस विनम्रता और सेवाओं को देखकर उनके मन में उसके प्रति ऊँचा शुभ संकल्प बन जाता है जिसके कारण वह व्यक्ति समाहित चित्त हो जाता है। स्वयं तर जाता है और दुनिया को तारने वाला बन जाता है क्योंकि समर्थ पुरुषों की हर एक क्रिया से उसमें बार-बार (शक्ति संचरित होती रहती है उनका बार-बार) आह्लाद पूर्वक शक्ति-संचार करना उनके अभ्युत्थान का कारण बन जाता है। इसलिये भगवान श्रीकृष्णचन्द्रजी ने:-

यथावरुन्धे सत्संग,

सर्व संगापहो हि माम्।

यह शब्द सत्संग की महिमा में कहे हैं।

